३० जुलाई १९९६ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

गृहस्थ धर्म

[धम्मिक सुत्तं]

गहट्ठवत्तं पन वो वदामि, यथाकरो सावको साधु होति।
न हेस लब्भा सपरिग्गहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो॥

कोई परिग्रही [गृहस्थ] संपूर्ण रूप से भिक्षु धर्म का परिपालन नहीं कर सकता। अतः मैं तुम्हें गृहस्थ धर्म बताता हूं कि पालन करने वाला श्रावक गृहीसज्जन बन जाता है, सत्पुरुष बन जाता है।

पाणं न हने न च घातयेय्य, न चानुजञ्ञा हनतं परेसं।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसा सन्ति लोके॥

न स्वयं किसी प्राणी की हत्या करे, न किसी से करवाए और न ही दूसरों को हत्या करने की अनुमति दे। संसार में जितने भी स्थावर व जंगम प्राणी हैं, सब के प्रति हिंसा त्याग दे।

ततो अदिन्नं परिवज्जयेय्य, किञ्चि क्वचि सावको बुज्झमानो।
न हारये हरतं नानुजञ्ञा, सब्बं अदिन्नं परिवज्जयेय्य॥

और फिर समझदार श्रावक बिना दी हुई किसी अन्य की कोई वस्तु ग्रहण करना छोड़ दे। न चुराए, और न ही किसी को चुराने की अनुमति दे। सब प्रकार की चोरी का सर्वथा परित्याग कर दे।

अब्रह्मचरियं परिवज्जयेय्य, अङ्गारकासुं जलितंव विञ्ञू।
असम्भुणन्तो पन ब्रह्मचरियं, परस्स दारं न अतिक्कमेय्य॥

समझदार व्यक्ति अब्रह्मचर्य को जलते हुए अंगारों से भरे गढे की तरह त्याग दे। और यदि ब्रह्मचर्य का पालन असंभव हो तो पर-स्त्री गमन तो न ही करे।

सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्स वेको न मुसा भणेय्य।
न भाणये भणतं नानुजञ्ञा, सब्बं अभूतं परिवज्जयेय्य॥

सभा या परिषद में जाकर एक-दूसरे के लिए न झूठ बोले, न बोलवाए और न बोलने की अनुमति ही दे। सब प्रकार के मिथ्या भाषण को सर्वथा त्याग दे।

मज्जञ्च पानं न समाचरेय्य, धम्मं इमं रोचये यो गहट्ठो।
न पायये पिवतं नानुजञ्ञा, उम्मादनन्तं इति नं विदित्वा॥

जो गृहस्थ सद्धर्म का इच्छुक है उसे चाहिए कि मदिरा को उन्मादजनक समझ कर उसे न स्वयं पिये, न पिलाये और न ही पीने की अनुमति दे।

मदा हि पापानि करोन्ति बाला, कारेन्ति चञ्ञेपि जने पमत्ते।
एतं अपुञ्ञायतनं विवज्जये, उम्मादनं मोहनं बालकन्तं॥

मूढ़ लोग मद के कारण ही पापकर्म करते हैं और अन्य मद-प्रमत्त लोगों से कराते हैं। इस पाप के अड्डे को त्याग दे, जो कि उन्मादक है, मोहक है और बालरंजक है याने मूर्खों को प्रिय है।

पाणं न हने न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं॥

प्राणी-हत्या न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले और मदिरापान न करे। अब्रह्मचर्य, मैथुन से विरत रहे और रात्रि में विकालभोजन न करे।

मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते।
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं॥

न माला धारण करे और न सुगंधि का सेवन करे। मंच पर सोये या जमीन पर या कंबल-सतरंजी पर। इसे अष्टांगिक उपोसथ याने अष्टशील कहते हैं। दुःख-पारंगत बुद्धों द्वारा यह प्रकाशित किया गया है।

ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथं, चातुद्दसिं पञ्चदसिञ्च अट्ठमिं।
पाटिहारियपक्खञ्च पसन्नमानसो, अट्ठङ्गुपेतं सुसमत्तरूपं॥

प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा अन्य पर्व के दिनों में शुद्ध चित्त से इन अष्ट-उपोसथ शील धर्मों का सम्यक प्रकार से पालन करे।

ततो च पातो उपवुत्थुपोसथो, अन्नेन पानेन च भिक्खुसङ्घं।
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथ विञ्ञू॥

समझदार व्यक्ति उपोसथ व्रत धारण कर प्रातःकाल मुदित मन से श्रद्धापूर्वक भिक्षु संघ को, संतों को अन्न और पेय का यथाशक्ति दान करे।

धम्मेन मातापितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं सो वणिज्जं।
एतं गिही वत्तय'मप्पमत्तो, सयम्पभे नाम उपेति देवेति॥

अपने को किसी धार्मिक व्यवसाय में लगाये और धर्मपूर्वक माता-पिता का पोषण करे। जो गृहस्थ अप्रमत्त होकर इस प्रकार सदाचरण करता है वह स्वयं प्रभ देवों में जन्म लेता है।

शील धर्म

शील धर्म पालन करना, सामाजिक व्यवस्था का पालन करना है। याने संपूर्ण समाज की व्यवस्था, किसी संप्रदाय-विशेष की व्यवस्था नहीं। अतः शील धर्म पर किसी संप्रदायविशेष का एकाधिकार नहीं है। शील-सदाचार का पालन सभी संप्रदायों को मान्य है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज की सुव्यवस्था बनाये रखने में उसकी अपनी सुरक्षा निहित है। समाज की सुख-शांति बनाये रखने में उसकी अपनी सुख-शांति निहित है।

जब कोई व्यक्ति हत्या करता है, पराई वस्तु चुराता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, मदिरा-प्रमत्त होता है तो सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करता है। सामाजिक सुख-शांति को भंग करता है। इसके विपरीत जब वह इन पांच शीलों का पालन करता है तो सामाजिक सुव्यवस्था स्थिर करने में सहायक होता है। सामाजिक सुख-शांति कायम रखने में मददगार बनता है। परंतु ऐसा करके वह किसी पर एहसान नहीं करता। औरों के साथ-साथ अपना भी भला करता है। यही शील धर्म है, सामाजिक धर्म है। अतः सर्व धर्म है।

पांच शीलों का ठीक-ठीक पालन करने के लिए मन को वश में करना तथा उसे विकार-विहीन रखना बहुत आवश्यक है। इसीलिए साधना भावना है जिसके अभ्यास द्वारा मन संयत होता है,

विरज-विमल होता है, सद्गुण-संपन्न होता है। साधना भावना द्वारा शील-पालन सरल होता है। शील-पालन द्वारा साधना-भावना सरल होती है। दोनों अन्योन्याश्रित है। साधना भावना के अभ्यास को पुष्ट करने के लिए जब हम कुछ दिनों के लिए अन्य सारी प्रवृत्तियों को त्याग कर गंभीरता पूर्वक निरंतर अभ्यास करते हैं तो किसी साधना-शिविर में सम्मिलित होते हैं। परंतु एक साथ अधिक दिनों तक किसी शिविर में बार-बार न जा सकें तो सप्ताह में, पक्ष में अथवा महीने में ही एक दिन घर पर अथवा किसी एकांत स्थान पर साधना भावना का निरंतर अभ्यास करना आवश्यक है। ऐसे समय पांच शील तो पालते ही हैं परंतु उनके अतिरिक्त तीन शील और ग्रहण करते हैं। यथा –विकालभोजन याने दोपहर बाद के भोजन से विरत रहते हैं। शृंगार-प्रसाधन तथा आमोद-प्रमोद से विरत रहते हैं। विलासी शय्या के शयन से विरत रहते हैं। इससे साधना-भावना में प्रभूत सहायता मिलती है।

उपरोक्त पांच शीलों की तरह ये तीन शील भी सार्वजनीन हैं। सामाजिक व्यवस्था में इनका सीधा संबंध भले न हो, परंतु व्यक्ति-व्यक्ति को सुधारने में इनका बड़ा हाथ है। इनसे मन पर संयम होता है। सादगी का सद्गुण पुष्ट होता है। त्याग की भावना प्रबल होती है। और सबसे बड़ी बात यह कि इनके सहयोग से साधना भावना में गहरा उतरना संभव होता है जिससे कि साधक सर्वतोमुखी लाभ हासिल करता है। व्यक्ति लाभान्वित होता है तो समाज लाभान्वित होता है। व्यक्ति-व्यक्ति में सुधार होता है तो संपूर्ण समाज में सुधार होता है।

साधको, इन शीलों के पालन से प्रत्यक्षतः हमारा जीवन सुधरता है। लोक सुधरता है। लोक सुधरे बिना परलोक कैसे सुधरे भला? अतः यह भी विश्वास किया जा सकता है कि शील-पालन से यदि हमारा लोक सुधरता है तो परलोक भी अवश्य सुधरता ही है।

जिन शीलों के पालन से व्यक्ति और समाज दोनों सुधरते हों, लोक और परलोक दोनों सुधरते हों, तो उनके पालन में हजार कठिनाइयां हो तब भी हमें उनका सामना करना ही चाहिए। जब तक सभी शीलों के पालन में संपूर्ण संपुष्टि नहीं आ जाती, तब तक जितने शील पाल पा रहे हैं; उन्हें दृढ़तापूर्वक पालते हुए शेष के पालन की पूरी-पूरी चेष्टा करें और शनैः शनैः धर्मपथ पर आगे बढ़ने के लिए कृतसंकल्प हों। इसी में हम सब का मंगल समाया हुआ है।

मंगल मित्र
स. ना. गो.

(नए साधकों के लाभार्थ 'विपश्यना' के वर्ष ८, अकं १२ का पुनर्मुद्रण)

गर्भवती मां और विपश्यना

(डा. ओम प्रकाश)

उस दिन एक शिविर में श्री गोयन्काजी का बच्चों के शिविर संबंधी उदबोधन पर एक टेप सुनने को मिला। उसमें बालक-बालिकाओंको विपश्यना से लाभ होने का विशद वर्णन था। साथ ही एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही कि बच्चे की शिक्षा और संस्कार तो उसे माता के गर्भ से ही प्राप्त होने लगते हैं। इसलिए यदि गर्भवती महिला भी विपश्यना की साधिका हो तो होने वाले शिशु को 'धर्म' के संस्कार विरासत में मिल जायेंगे। उनका यह कथन केवल मात्र अनुमान मात्र नहीं हैं। यह एक तथ्य है। हमारी संस्कृति में जीवन-सुधार के लिए १६ संस्कारों की व्यवस्था है। इन १६ में से ३ संस्कार बच्चे के जन्म होने के पहले के हैं। अन्य सभी संस्कार विभिन्न देश और संस्कृतियों में जन्म के बाद ही होते हैं। जैसे नामकरण (Baptism), केश-छेदन, विवाह, और अंत्येष्टि आदि ही हैं। हमारे मनीषी और ऋषियों ने गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमंतोन्नयन – ये तीन संस्कार जन्म के पहले के बताये हैं। इनमें विशेष मंत्रों द्वारा प्रार्थना, उत्तम स्वास्थ्य तथा मन और चित्त की शुद्धता का कार्यक्रम होता है। हमारी आस्था के अनुसार गर्भाधान संभोग सुख के लिए नहीं, बल्कि उत्तम संतान प्राप्ति के हेतु किया गया एक सात्विक धार्मिक कृत्य है। गर्भ स्थित हो जाने पर पुष्टिकारक भोजन तथा ओषधि का प्रयोग उत्तम स्वास्थ्य के लिए किया जाना इस पुंसवन संस्कार का महत्त्व है। माता के मन को शांत, उदात्त विचारों वाला, प्रसन्न और स्वस्थ चित्त रखने का प्रयत्न सीमंतोन्नयन संस्कार का उद्देश्य है।

कहा गया है –**मातृमान्, पितृमान्, आचार्यो वेदः** –अतः माता ही प्रथम गुरु है। माता के मानसिक विचार तथा भाव और भावनाओं आदि का पुष्कल प्रभाव शिशु पर पड़ता है। यह सर्वविदित बात है कि बच्चे की शक्ल-सूरत, माता-पिता पर जाती है, इतना ही नहीं उसकी बोल-चाल का तरीका, उठने-बैठने, चलने, लेटने सोने आदि की आदतें, हाव-भाव, चाह-अनचाह आदि बहुत-सी बातें माता-पिता के अनुरूप ही होती हैं। यह सब प्रकृति द्वारा माता-पिता में पाये जाने वाले जीनों के द्वारा ही होता है। ये जीन (Gene) ही इन संस्कारों को देते हैं। अतः यदि माता विपश्यी होगी तो संतान को भी उसके अच्छे संस्कार विरासत में मिल जायेंगे। (Foetus) भ्रूण छठे महीने में ही सुनने लग जाता है, तथा उसका (Nervous System) स्नायुतंत्र विकसित होने लगता है। मां यदि चौथे-पांचवे मास से ही विपश्यना करे तो अवश्यमेव आशातीत लाभ होगा ही।

इतिहास में इस बात के उदाहरण हैं कि बच्चे को गर्भ में ही अनेक शिक्षाएं प्राप्त हुई हैं। महाभारत के आख्यान में अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन की क्रिया का ज्ञान गर्भ में ही प्राप्त हो गया था। अर्जुन, सुभद्रा को यह ज्ञान दे रहे थे। सुनते-सुनते सुभद्रा सो गयी और अर्जुन भी चुप हो गये। फलस्वरूप व्यूह से बाहर निकलने का गुर बिना बताये ही रह गया और बेचारा अभिमन्यु मार डाला गया। लव, कुश को भी शस्त्र ज्ञान गर्भ में ही मिला, यह कहा गया है। कुछ लोग महाभारत को मिथक (Myth) बताते हैं। पर चाहे कुछ भी हो, इससे इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि जब महाभारत का कथानक लिखा गया होगा तो इस बात का ज्ञान तो था ही कि माता द्वारा सुनी हुई बात का प्रभाव शिशु पर होता है।

मार्च १९८५ के अंग्रएजी मासिक 'रीडर्स डाइजेस्ट' (Readers Digest) के अंक में बालक के जन्म से पूर्व के जीवन के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था। इसमें वैज्ञानिकों ने अनेक ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनसे जन्म के पूर्व के संस्कारों का पूरा प्रमाण नवजात शिशु पर परिलक्षित होने की पुष्टि होती है। इस लेख के अनुसार श्रीमती हेलन का कहना है कि वह

एक विशेष लोरी अपनी संतान के जन्म से पूर्व गाया करती थी। बालक पैदा हुआ तो वह लोरी (गीत) बच्चे पर जादू का असर करती।वह चाहे कितनाही बेचैन हो, रोता हो या चिल्लाता हो –इस गीत को सुनते ही पूर्ण शांत हो जाता था।

बाल-रोग विशेषज्ञ डॉ. ट्वी के १९६० से ही किये गये अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि गर्भ के छठवें मास से ही बच्चा सुनने और अनुभव करनेलग जाता है। माता की बोली और ध्वनि के प्रति संवेदनशील होने लगता है। विशेष प्रकार के संगीत से शांत और दूसरे प्रकार के गान से उद्विग्न हो जाता है।

कनाडा के एक विख्यात संगीत-गायक का कहना है कि उन्हें संगीत की कुछ कठिन धुनों को बिना देखे ही बजा लेने की अद्भुत क्षमता प्राप्त हो गयी थी। उन्हें हैरानी थी कि ऐसा क्यों होता है। उन्होंने एक दिन अपनी माता से इस समस्या का हल पूछा तो उसने बताया कि जब वह गर्भ में था तब वह उन पदों का अभ्यास किसी विशेष आयोजन के लिए करती रही थी। उसके कारण ही ऐसा हुआ होगा।

इसी प्रकार बालिका क्रिस्टीना की कहानी है। बच्ची जब पैदा हुई तो अपनी मां का दूध न पीती। रोती, चिल्लाती, भूखी रह जाती, परंतु मां के स्तनों को मुँह भी न लगाती, परंतु धाय (Wet Nurse) को दी जाती तो उसका दूध तुरंत पी लेती। इसका कारण मां ने बताया कि गर्भ की प्रारंभिक अवस्था में उसने गर्भ-पात करने का प्रयास किया था, पर अपने पति के आग्रह पर वह रुक गयी थी। इससे बालिका के मन में विद्रोह की भावना पैदा हो गयी।

इसी प्रकार के और भी अनेक उदाहरण वैज्ञानिकों ने एकत्र किये हैं, जिनसे सिद्ध हो जाता है कि शिशु पर मां-पिता के व्यवहार, विचारों, शील-सदाचार आदि का प्रभाव पड़ता ही है।

विपश्यना द्वारा व्याक्ति की मानसिक और चैतसिक विशुद्धि होती है। मन की गहराइयों में पड़े हुए विकारोंसे मुक्ति होती है, यह निश्चित है।

अतः गर्भवती माताएं शील पालन करती हुई नियमित रूप से विपश्यना साधना करें तो भावी संतान अवश्यमेव एक धर्मनिष्ठ, चरित्रवान, उत्तम नागरिक बनने में सक्षम होगी।

भवतु सब्ब मंगलं!

– सी ३४ पंच्यशील एन्क्लेव नयी-दिल्ली – ११००१७.

महाराराज्य के कारागृह में शुद्ध धर्म का प्रवेश

१६ फरवरी, १९९६ को नाशिक रोड केंद्रीय कारागृह में पूज्य गुरुजी का धर्म-प्रवचन हुआ। कारागृह के सभी वंदियों और ३०० कर्मचारियों ने इसका लाभ उठाया। इसके बाद ७ कर्मचारी – अधिकारियोंने धम्मगिरि आकर विपश्यना शिविर का लाभ उठाया। तत्पश्चात कारागृह में पहला शिविर ७ मार्च को लगा जिसमें ९९ वंदी साधकोंने भाग लिया। १०वें दिन की मंगल मैत्री में भी पूज्य गुरुजी और माताजी पधारे थे। शिविर बहुत सफल रहा। उसके बाद ८-१९ अप्रल और ५-१६ मई तक क्रमशः दो शिविर सफलतापूर्वक संपन्न हुए। प्रत्येक में लगभग १०० वंदियों ने धर्मलाभ प्राप्त किया।जेल की आंतरिक रचना साधना के बहुत अनुकूल है। यह पुराने जमाने के विहार जैसी लगती है। अधिकारियों का संकल्प है कि हर महीने कम से कम एक शिविर यहां अवश्य लगता रहे।

इसी प्रकार महाराशाशन ने मंत्रालय के कर्मचारियों^ अधिकारियों के लाभार्थ एक अधिसूचना जारी कर सवैतनिक अवकाश प्रदान करते हुए विपश्यना शिविरों का लाभ लेने की छूट दी है। सचमुच धर्म-प्रसार का समय आया है। अधिक से अधिक लोग धर्मलाभ लेने के लिए आतुर हैं। **'जी-टीवी'** के जागरण कार्यक्रम में प्रसारित हो रहे पूज्य गुरुजी के प्रवचनों को सुन कर दिन-प्रति-दिन अनेकों मुमुक्षुओं के पत्र आते चले जा रहे हैं। सभी धर्म-पिपासुओं का सही माने में मंगल हो! (सं.)

साधकों के उद्गार

● नैनीताल से श्रीमती पुष्पा सिंह लिखती हैं, "मेरे पिताजी स्व. श्री रामहेत सिंह जिन्होंने लगभग दस वर्ष पूर्व कुशीनगर में अपना पहला शिविर किया और यह विद्या उन्हें इतनी अच्छी लगी कि उसके पश्चात ५-६ शिविरों में भाग लेकर नियमित अभ्यास करते हुए पूज्य गुरुजी की पुस्तकें पढ़ने के साथ उनके सभी प्रवचनों और दोहों को बार-बार सुनते रहते। अनेकों को शिविर के लिए प्रोत्साहित किया और जो मिलता उससे धर्मचर्चा ही करते। प्रधानाचार्य पद से निवृत्त होने के बाद अपने गृह कार्यक्षेत्र फैजाबाद में विपश्यना के प्रचार-प्रसार हेतु 'बुद्ध शिक्षा समिति' और 'महिला महाविद्यालय' की स्थापना की।वे विपश्यना को स्कूल व कालेजों में पाठ्यक्रम की भांति संचालित करना चाहते थे ताकि नई पीढ़ी शुद्ध धर्म को धारण कर सके। परंतु कुछ अज्ञानियों की क्रूर हिंसा के शिकार हुए और १५ मार्च को मकान के अहाते में उनका आकस्मिक निधन हो गया।

मृत्यु के पश्चात उनके चेहरे पर अपूर्व शांति झलक रही थी। जैसे हमलावरों के प्रति ही करुणा से भरे हुए हों। ऐसा शील-सदाचार से भरा धार्मिक जीवन सब को प्राप्त हो। सभी धर्मगंगा में डुबकी लगा कर अपना मंगल साधें!"

जेल शिविर के साधकों के उद्गार

● तिहाड़ की जेल क्रमांक १ से पच्चीस वर्षीय श्री संदीप जैन लिखते हैं, "मेरे मन में इतनी शांति है कि जो इससे पहले कभी नहीं आयी थी। मैं अपने आप को बहुत भाग्यशाली मानता हूं कि मुझे जेल में ऐसा मौका मिला। मेरे अंदर इतना क्रोध था कि बाहर जाते ही दो-चार मर्डर कर देता। पर अब इतनी शांति अनुभव कर रहा हूं, जिसका शायद मैं बयान नहीं कर सकता। मेरे परिवार वाले भी चकित हैं कि मेरा मन इतना शांत व शीतल कैसे हो गया! मेरी नशे की आदत सारी छूट गयी। यहां मैं ३ घंटे नित्य नियमित साधना कर लेता हूं। प्रयत्न करूंगा कि बाहर जाकर औरों को भी इस शिविर का लाभ दिला सकूं।अगर मैं इस काम में सफल रहा तो अपने आप को बहुत बड़ा भाग्यशाली मानूंगा।"

● तिहाड़ की जेल क्रमांक ३ से श्री गुरुदयाल दास पूज्य गुरुजी के प्रति अपनी कृतज्ञता कविता के रूप प्रकट करते हैं "...

सांप्रदायिकता से ऊपर उठाती है विपश्यना,
मानवता का पाठ पढ़ाती है विपश्यना।
जो इस पथ पर अग्रसर होता है,
कला जीने की, सिखाती है विपश्यना॥ आदि ..."